ओ३म्

'महर्षि दयानन्द की अध्ययन–अध्यापन संबंधी कुछ उत्तम शिक्षायें'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

महर्षि दयानन्द वेदों के अनुपम विद्वान और समाज सुधारक थे। वेद ईश्वरीय ज्ञान है और धर्म–कर्म की दृष्टि से सभी संसार के मनुष्यों द्वारा वैदिक ज्ञान व कर्मों का पालन ही उचित व आवश्यक है अन्यथा वह जीवन के उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकते। इस विषय को महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में प्रश्नोत्तर शैली व तर्क व प्रमाण के आधार पर सिद्ध किया है जिसका सभी को अध्ययन करना चाहिये। महर्षि दयानन्द ने बालकों एवं वृद्धों के लिए समान रूप से उपयोगी शिक्षा की एक पुस्तक **''व्यवहारभानुः''** की रचना की है। इस पुस्तक की शिक्षायें इतनी महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है जिसकी किसी धर्म ग्रन्थ व अन्य पुस्तक से कोई समानता नहीं है। यह पुस्तक अपनी उपमा आप ही है। इस पुस्तक के प्राक्कथन में महर्षि दयानन्द ने उत्तम विचारों को प्रस्तुत किया है। आईये इसका अवलोकन व अमृतपान कर लेते हैं। वह लिखते हैं कि **मैंने परीक्षा करके निश्चय किया है कि जो धर्मयुक्त व्यवहार में ठीक–ठीक वर्त्तता है उसको सर्वत्र सुखलाभ और जो विपरीत वर्त्तता है वह सदा दुःखी होकर अपनी हानि कर लेता है। देखिए, जब कोई सभ्य मनुष्य विद्वानों की सभा में वा किसी के पास जाकर अपनी योग्यता के अनुसार नमस्ते आदि करके बैठके दूसरे की बात ध्यान से सुन, उसका सिद्धान्त जान–निरभिमानी होकर युक्त प्रत्युत्तर करता है, तब सज्जन लोग प्रसन्न होकर उसका सत्कार और जो अण्ड–बण्ड एकता है उसका तिरस्कार करते हैं। जब मनुष्य धार्मिक होता है तब उसका विश्वास और मान्य शत्रु भी करते हैं और जब अधर्मी होता है तब उसका विश्वास और मान्य मित्र भी नहीं करते। इससे जो थोड़ी विद्यावाला भी मनुष्य श्रेष्ठ विद्या पाकर सुशील होता है उसका कोई भी कार्य नहीं बिगड़ता।** सब मनुष्यों को उत्तम शिक्षा और सभी विद्यार्थियों का आचार अत्युत्तम करने के लिए महर्षि दयानन्द ने व्यवहारभानु पुस्तक की रचना की है।

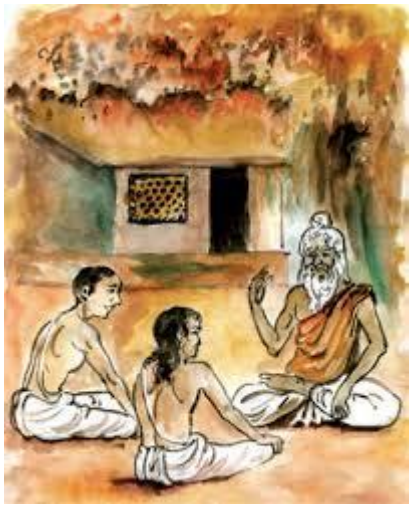

महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि ऐसा कौन सा मनुष्य होगा कि जो सुखों को सिद्ध करनेवाले व्यवहारों को छोड़कर उलटा आचरण करे। क्या यथायोग्य व्यवहार किये बिना किसी को सर्वसुख हो सकता है? क्या कोई मनुष्य है जो अपनी और अपने पुत्रादि सम्बन्धियों की उन्नति न चाहता हो? इसलिए सब मनुष्यों को उचित है कि श्रेष्ठ शिक्षा और धर्मयुक्त व्यवहारों से वर्त्तकर सुखी होके दुःखों का विनाश करें। क्या कोई मनुष्य अच्छी शिक्षा से धर्मार्थ, काम और मोक्ष फलों को सिद्ध नहीं कर सकता और इसके बिना पशु के समान होकर दुःखी नहीं रहाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने बालक से लेके वृद्धपर्यन्त मनुष्यों के सुधार के अर्थ यह व्यवहार सम्बन्धी शिक्षा का विधान किया है।

मनुष्य जीवन के सुधार में मुख्य भूमिका माता–पिता के बाद आचार्य वा शिक्षकों की होती है। कैसे पुरूष पढ़ाने और शिक्षा करने हारे होने चाहिये? इस प्रश्न को प्रस्तुत कर इसके उत्तर में वह कहते हैं कि पढ़ाने वालो को **'आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता। यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते।'** अर्थात् जिसको परमात्मा और जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान, जो आलस्य को छोड़कर सदा उद्योगी, सुखदुःखादि का सहन, धर्म का नित्य सेवन करनेवाला, जिसको कोई पदार्थ धर्म से छुड़ाकर अधर्म की ओर न खेंच सके, वह पण्डित कहाता है। शिक्षकों में यह अनिवार्य गुण होने चाहिये। आगे वह कहते हैं कि **'निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते। अनास्तिकः श्रद्धवान एतत् पण्डितलक्षणम्।'** अर्थात् जो सदा प्रशस्त, धर्मयुक्त कर्मों का करने और निन्दित=अधर्मयुक्त कर्मों को कभी न सेवनेहारा, न कदापि ईश्वर, वेद और धर्म का विरोधी और परमात्मा, सत्यविद्या और धर्म में दृढ़ विश्वासी है, वही

मनुष्य पण्डित के लक्षण युक्त होता है और वही अध्यापक व शिक्षक होने योग्य है। **'क्षिप्रं विजानाति चिरं श्रृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्। नासंपृष्टो ह्युपयुंक्ते परार्थे तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य।'** अर्थः जो वेदादि शास्त्र और दूसरे के कहे अभिप्राय को शीघ्र ही जानने, दीर्घकालपर्यन्त वेदादि शास्त्र और धार्मिक विद्वानों के वचनों को ध्यान देकर सुनके ठीक–ठीक समझकर निरभिमानी, शान्त होकर दूसरों से प्रत्युत्तर करने, परमेश्वर में तन, मन, धन से प्रवर्त्तमान होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय शोकादि दुष्टगुणों से पृथक वर्त्तमान, किसी के पूछे बिना वा दो व्यक्तियों के संवाद में बिना प्रसंग के अयुक्त भाषणादि व्यवहार न करने वाला है, वही पण्डित की बुद्धिमत्ता का प्रथम लक्षण है और ऐसे मनुष्य ही आचार्य वा बालकों को पढ़ाने वाले होने चाहिये। इसके बाद प्रस्तुत तीन श्लोकों के हिन्दी अर्थ करते हुए उन्होंने लिखा है कि जो मनुष्य प्राप्त होने के अयोग्य पदार्थों की कभी इच्छा नहीं करते, किसी पदार्थ के अदृष्ट वा नष्ट–भ्रष्ट हो जाने पर शोक नहीं करते और बड़े–बड़े दुःखों से युक्त व्यवहारों की प्राप्ति में भी मूढ़ होकर नहीं घबराते हैं वे मनुष्य पण्डितों की बुद्धि युक्त कहलाते हैं व शिक्षक होने के योग्य हैं। जिसकी वाणी सब विद्याओं में चलनेवाली, अत्यन्त अदभुत विद्याओं की कथाओं को करने, बिना जाने पदार्थों को तर्क से शीघ्र जानने–जनाने, सुनी–विचारी विद्याओं को सदा उपस्थित रखने और जो सब विद्याओं के ग्रन्थों को अन्य मनुष्यों को शीघ्र पढ़ानेवाला मनुष्य है, वही पण्डित कहाता है। जिसकी सुनी हुई और पठित विद्या अपनी बुद्धि के सदा अनुकूल और बुद्धि और क्रिया सुनी–पढ़ी विद्याओं के अनुसार, जो धार्मिक, श्रेष्ठ पुरूषों की मर्यादा का रक्षक और दुष्ट–डाकुओं की रीति को विदीर्ण–करनेहारा मनुष्य है, वही पण्डित नाम से सम्बोधित करने योग्य होकर अध्यापन का कार्य कर सकता है।

उपर्युक्त श्लोकों व उनके हिन्दी अर्थों में पण्डितों के लक्षण बताकर महर्षि दयानन्द कहते हैं कि जहां ऐसे सत्पुरूष पढ़ाने और बुद्धिमान पढ़नेवाले होते हैं वहां विद्या, धर्म की वृद्धि होकर सदा आनन्द ही बढ़ता जाता है और जहां मूढ़ पढ़ने–पढ़ानेहारे होते हैं, वहां अविद्या और अधर्म की वृद्धि होकर दुःख बढ़ता ही जाता है। इस कारण वह कहते हैं कि जिन लोगों को न पढ़ाना और न उपदेश करना चाहिये उन लोगों में वह लोग हैं जो किसी विद्या को न पढ़ और किसी विद्वान का उपदेश न सुनकर बड़े घमण्डी, दरिद्र होकर बड़े–बड़े कामों की इच्छा करनेहारे और बिना परिश्रम के पदार्थों की प्राप्ति में उत्साही होते हैं। ऐसे मनुष्य को विद्वान लोग मूर्ख कहते हैं। यहां महर्षि दयानन्द ने दृष्टान्त रूप से शेखचिल्ली की कथा लिख कर कुछ महत्वपूर्ण वचन प्रस्तुत किये हैं जो विस्तृत होने के कारण पुस्तक **'व्यवहारभानु'** में ही देखने उचित हैं।

विद्या पढ़ने व पढ़ाने वालों को किन दोषों से मुक्त होना चाहिये उसका प्रकाश करते हुए कहा है कि आलस्य, नशा करना, मूढ़ता, चपलता, व्यर्थ इधर–उधर की अण्ड–बण्ड बातें करना, जड़ता––कभी पढ़ना कभी न पढ़ना, अभिमान और लोभ–लालच––ये सात विद्यार्थियों के लिए विद्या के विरोधी दोष हैं, क्योंकि जिसको सुख चैन करने की इच्छा है उसको विद्या कहां और जिसका चित्त विद्याग्रहण करने–कराने में लगा है उसको विषय–सम्बन्धी सुख–चैन कहां? इसलिए विषय–सुखार्थी विद्या को छोड़े और विद्यार्थी विषयसुख से अवश्य अलग रहें, नही तो परमधर्मरूप विद्या का पढ़ना–पढ़ाना कभी नहीं हो सकता। विद्यार्थियों और शिक्षकों के दोषों का ज्ञान कराकर कैसे मनुष्य विद्या प्राप्ति कर और करा सकते हैं उनका वर्णन करते हुए महर्षि दयान्द ने महाभारत से भीष्म व युधिष्ठिर संवाद प्रस्तुत कर लिखा है भीष्म जी ने राजा युधिष्ठिर को कहा कि हे राजन् ! तू ब्रह्मचर्य के गुण सुन। जो मनुष्य इस संसार में जन्म से लेकर मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी होता है उसको कोई शुभ गुण अप्राप्य नहीं रहता। ऐसा तू जान कि जिसके प्रताप से अनेको व करोड़ों ऋषि ब्रह्मलोक, अर्थात् मुक्तावस्था में सर्वानन्दस्वरूप परमात्मा में वास करते और इस लोक में भी अनेक सुखों को प्राप्त होते हैं। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले मनुष्य निरन्तर सत्य में रमण करते, जितेन्द्रिय, शान्तात्मा, उत्कृष्ट शुभ–गुण–स्वभावयुक्त और रोगरहित पराक्रमयुक्त शरीर, ब्रह्मचर्य, अर्थात् वेदादि सत्य–शास्त्र और परमात्मा की उपासना का अभ्यासादि कर्म करते हैं, वे सब बुरे काम और दुःखों को नष्ट कर सर्वोत्तम धर्मयुक्त कर्म और सब सुखों की प्राप्ति करानेहारे होते हैं और इन्हीं के सेवन से मनुष्य उत्तम अध्यापक और उत्तम विद्यार्थी हो सकते हैं। इसके बाद महर्षि दयानन्द ने अनेकानेक विषयों पर बहुत ही महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं जिसके लिए व्यवहारभानु पुस्तक का अध्ययन कर लाभ लेना चाहिये।

हम आशा करते हैं कि पाठक लेख में प्रस्तुत विचारों को पसन्द करेंगे और व्यवहारभानु पुस्तक को प्राप्त कर उसका स्वाध्याय कर अधिकाधिक लाभान्वित होंगे।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः09412985121